व्यसनमुक्त हो जीवन

परमपूज्य व्याख्यानवाचस्पति
श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज शिष्य
ज्योतिषाचार्य ज्योतिषसम्राट्शिरोमणि
मुनिजयप्रभविजय श्रमण...

आज के इस भौतिक चकाचौंध वाले युग में बहुसंख्यक व्यक्ति किसी न किसी व्यसन से ग्रस्त हैं। कुछ व्यसन आज एक फैशन का रूप में ले चुके हैं। जब व्यसनग्रस्त व्यक्तियों का ध्यान इन व्यसनों के दुष्परिणामों की ओर आकर्षित किया जाता है, तो वे अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें स्वीकार तो कर लेते हैं, किन्तु व्यसन त्यागने के लिए तत्परता प्रदर्शित नहीं करते हैं। आज की नई पीढ़ी तो प्रायः व्यसनाधीन होती जा रही है। उसे व्यसनों से दूर रखने के प्रयास भी निरर्थक सिद्ध होते जा रहे हैं। व्यसनों के भयावह दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। फिर भी समाज व सरकार उनकी ओर से उदासीन हैं। हम यहाँ व्यसन शब्द का उपयोग कर रहे हैं, किन्तु यह व्यसन क्या है? इसको समझना आवश्यक है। इसे समझने के लिए व्यसन का अर्थ और उसके प्रकारों की विवेचना आवश्यक प्रतीत होती है। वही हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं-

व्यसन के संबंध में किसी यशस्वी कवि ने लिखा है-

व्यसनस्य मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मतः॥

तात्पर्य यह है कि मृत्यु और व्यसन इन दोनों में से व्यसन अधिक हानिप्रद है। क्योंकि मृत्यु एक बार ही कष्ट देती है, पर व्यसनी व्यक्ति जीवन भर कष्ट पाता है और मरने के पश्चात् भी वह नरक आदि में विभिन्न प्रकार के कष्टों का उपभोग करता है। जबकि अव्यसनी जीते जी भी यहाँ पर सुख के सागर पर तैरता है और मरने के पश्चात स्वर्ग के रंगीन सुखों का उपभोग करता है।

व्यसन का अर्थ - कोई भी व्यक्ति जन्मजात व्यसनी नहीं होता। व्यसन तो एक आदत है, जो संगति में रहने पर पड़ती है। जो जैसे वातावरण और व्यक्तियों की संगति में रहेगा उसके अनुरूप ही उसका जीवन, उसकी आदत बन जाएगी। किंचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो काजल की कोठरी में रहकर भी बेदाग निकल आए। जब व्यसन के अर्थ पर आते हैं तो व्यसन का अर्थ कष्ट होता है। यह संस्कृतशब्द है। यह प्रवृत्तिजन्य है। अर्थात्, जिस प्रवृत्ति से कष्ट होता है, उस प्रवृत्ति को व्यसन कहा जाता है। यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है। वह यह कि यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसे मदिरापान से कष्ट नहीं आनंद मिलता है, इसलिए मदिरापान उसके लिए व्यसन नहीं है, तो क्या यह सत्य मान लिया जाएगा? नहीं, कदापि नहीं। कारण यह है कि मदिरापान का तात्कालिक परिणाम उस व्यक्ति के लिए आनंददायक भले ही हो, किन्तु अंतिम परिणाम हर दशा में कष्टप्रद ही रहने वाला है। अतः मदिरापान व्यसन है। व्यसन एक प्रकार का विषवृक्ष है, जो मनुष्य के जीवन को शनैः-शनैः नष्ट करता है। उसके परिवार की सुख-शांति को बर्बाद करता है। यहाँ एक बात और कहना उचित प्रतीत होती है। वह यह कि बुराई व्यक्ति को अपनी ओर शीघ्रता से आकर्षित करती है। व्यक्ति उसकी ओर आकृष्ट होकर उसे अपनाने लगता है। फिर धीरे-धीरे वह उसमें डूब जाता है। उससे बाहर निकल पाना उसके लिए कठिन हो जाता है। वैसरे यह कहते हुए भी हम सुनते हैं कि क्या करें आदत पड़ गई है अब छूटती ही नहीं है। किन्तु व्यक्ति यह भूल जाता है कि आदत भी उसने ही डाली है। यदि व्यक्ति दृढ़ संकल्प कर ले तो आदत में परिवर्तन करना कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो अपनी आदत में परिवर्तन नहीं कर पाते हैं, उनमें आत्मबल की कमी रहती है। जो व्यक्ति व्यसनों के दुष्परिणामों से परिचित रहते हुए भी यदि उनका परित्याग नहीं करते हैं, उनका सामाजिक जीवन प्रायः नष्ट हो जाता है और प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। पारिवारिक जीवन संघर्षमय हो जाता है, अतः जहाँ तक हो सके व्यसनों से बचना ही चाहिए।

व्यसन के प्रकार - व्यसनों को संख्या की सीमा में बाँध पाना सरल नहीं है। कारण कि प्रत्येक वह आदत जो परिवार में संघर्ष को जन्म देती है, समाज में प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाती है, व्यसन की श्रेणी में आती है। फिर भी विद्वानों ने व्यसन में भेद, प्रकार बताए हैं। वैदिक ग्रंथों में अठारह प्रकार के व्यसन बताते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा गया है-

दश कामसमुत्थानि तथाऽष्टौ कोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि यत्नेन परिवर्जयेत्॥
मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तीर्थत्रिकं वृथाऽट्य च कामजो दशको गणः॥
पैशून्यं साहसं द्रोहे ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारूष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः॥

अठारह व्यसन में दस व्यसन कामज हैं और आठ व्यसन कोधज हैं। जो इस प्रकार है-

दस कामज व्यसन - (१) मृगया, (२) अक्ष (जुआ), (३) दिन का शयन, (४) परनिन्दा, (५) परस्त्री सेवन, (६) मद, (७) नृत्य सभा, (८) गीत सभा, (९) वाद्य की महफिल और (१०) व्यर्थ भटकना।

आठ क्रोधज व्यसन - (१) चुगली खाना, (२) अति साहस करना, (३) द्रोह करना, (४) ईर्ष्या, (५) असूया, (६) अर्थ दोष, (७) वाणी से दण्ड और कठोर वचन।

इस संबंध में जैन साहित्य का आलोडन करते हैं तो पाते हैं कि जैनाचार्य मुख्य रूप से सात प्रकार के व्यसन बताते हैं। यथा-

द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या पापर्द्धि चौर्य परदारसेवा।
एतानि सप्तव्यसनानि लोके घोरातिघोरं नरकं नयन्ति।

सात व्यसन इस प्रकार हैं-

(१) जुआ, (२) मांसाहार, (३) मद्यपान, (४) वेश्यागमन, (५) शिकार, (६) चोरी और (७) पर स्त्रीगमन। यदि हम सूक्ष्मता से विचार करें तो जितने भी व्यसन हैं, वे सभी इन सात व्यसनों में आ जाते हैं।

वर्तमान युग में कुछ नवीन प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। जैसे अश्लील साहित्य पढ़ना, अश्लील चलचित्र देखना, तम्बाकू सेवन, गुटखे के रूप में या बीड़ी, सिगरेट के रूप में, विभिन्न प्रकार के गुटखों का सेवन आदि। ये सब भी व्यसनों की भाँति ही हानिप्रद है। प्रारंभ में तो व्यसन सामान्य से लगते हैं, किन्तु आगे चलकर ये उग्र रूप धारण कर लेते हैं। व्यक्ति को इनकी बुराई उस समय दिखाई देती है, जब वह कैंसर अथवा व्यसन जन्य किसी भयंकर रोग से ग्रस्त हो जाता है और उपचार कराने के बाद भी ये रोग ठीक नहीं हो पाते हैं। व्यक्ति को अपने सामने अपनी मृत्यु दिखाई देती है। तब वह पश्चात्ताप करता है। और उस घड़ी को कोसता है जब उसने व्यसन प्रारंभ किया, किन्तु अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत। समय रहते आदमी को चेत जाना चाहिए। पहली बात तो यह कि उसे किसी व्यसन में पड़ना ही नहीं चाहिए और यदि किसी कारणवश उसे कोई व्यसन लग गया है तो तत्काल उसे मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। किन्तु व्यक्ति ऐसा न करते हुए उसमें और अधिक डूबता चला जाता है। उसकी आँख तो तब खुलती है जब उसे अपने पतन का गर्त दिखाई देता है। अब हम जिन सात व्यसनों का नामोल्लेख ऊपर कर चुके हैं, उनके विषय में संक्षिप्त रूप में विचार करेंगे।

जुआ - जुआ का जन्म कैसे हुआ? यह कहना तो कठिन है किन्तु अनुमान यह लगाया जा सकता है कि बिना किसी श्रम के सम्पत्ति प्राप्त करने की लालसा से इसका जन्म हुआ होगा। अथवा मनोरंजन के लिए खेले जाने वाले किसी खेल के माध्यम से इसकी उत्पत्ति हुई होगी। कुछ भी हो, यह एक ऐसा व्यसन है कि जिसे भी एक बार इसकी आदत या यों कहें लत लग जाती है वह इसमें और अधिक डूबता चला जाता है। हारने के बाद भी व्यक्ति दाँव पर दाँव लगाता चला जाता है। अपना सब कुछ खो जाने के पश्चात् वह चिंताग्रस्त हो जाता है। ऋण लेकर भी जुए पर दाँव लगाता है। उसकी आशा मृग मरीचिका ही सिद्ध होती है। धन प्राप्त करने की लालसा में वह दाँव पर दाँव लगाकर अपने आपको बर्बाद कर लेता है।

हमारे ऋषिमुनियों ने जुए को त्याज्य माना है। तभी तो ऋग्वेद में कहा गया है- अक्षैर्मा दिव्यः। (१०.३४.१३)

सूत्रकृतांग सूत्र ९/१० में चौपड़ अथवा शतरंज के रूप में जुआ खेलना मना किया गया है। जुए को लोभ का बालक भी कहा गया है और यह कहा गया है कि यह फिजूलखर्ची का माता-पिता है। जुआ किसी भी रूप में खेला जावे, वह असाध्य रोग है। यदि इतिहास के पृष्ठ पलटेंगे तो हमें ज्ञात हो जाएगा कि जुआ प्राचीन काल में भी प्रचलित था और न केवल सामान्य जन पतन के गर्त में समा चुके हैं। महाभारत का उदाहरण हमारे सामने है। युधिष्ठिर ने अंधा होकर अपनी पत्नी द्रौपदी तक को दाँव पर लगा दिया था। इससे अधिक व्यक्ति का पतन और

D:\GYAN\MAMA\KHAND8.PM5
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या हो सकता है। जुए के कारण राजा नल और दमयंती की जो दुर्गति हुई वह किसी से छिपी हुई नहीं है। प्राचीन काल में एक मिथ्या धारणा यह थी कि यदि कोई जुआ खेलने के लिए आह्वान करता है तो उसे ठुकराना नहीं चाहिए वरन् उसका निमंत्रण स्वीकार कर जुआ खेलना चाहिए।

वर्तमान समय में जुए का प्रचलन अनेक रूपों में है। अधिकारी वर्ग क्लबों में जुआ खेलते हैं। धनाढ्य अपने तरीके से खेलते हैं और गरीब अपने तरीके से। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास हो रहा है, वैसे-वैसे इस व्यसन का भी विकास हो रहा है। व्यक्ति स्वयं ही अपने विनाश के द्वार खोल रहा है। इस विषय पर और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किन्तु यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समझदारी इसी में है कि जुए को अपनाया ही नहीं जाए। इस व्यसन से दूर ही रहना उचित है।

(२) मांसाहार - महाभारत में कहा गया है कि मांस न पेड़ पर लगता है और न भूमि में उत्पन्न होता है। यह प्राणिजन्य है, इसलिए त्याज्य है। वास्तविकता तो यह है कि यह भी एक व्यसन ही है। एक बार जिस व्यक्ति को इसकी चाट लग जाती है, वह इसके पीछे-पीछे लगा रहता है। व्यक्ति यह भूल जाता है कि बिना हिंसा किए, किसी प्राणी के प्राण लिए मांस उपलब्ध नहीं हो सकता। आचार्य मनु के शब्दों में जीवों की हिंसा के बिना मांस उपलब्ध नहीं होता और जीवों का वध कभी स्वर्ग प्रदान नहीं करता-

नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसा, मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥48॥
समुत्पत्तिं च मांसस्य बधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्॥49॥

जब जीव के वध के बिना मांस प्राप्त नहीं हो सकता तो फिर इसका त्याग करना ही उचित है। कारण कि हिंसाजन्य समस्त पाप भी लगते हैं, जो हिंसा करता है, उसे स्वर्ग मिल नहीं सकता। हिंसक की दुर्गति ही होती है। आचार्य हेमचंद्र ने हिंसा के फल बताते हुए लिखा है कि पंगुपन कोढ़ीपन, लूला आदि हिंसा के ही फल हैं-

पंगु-कुष्ठि-कुणित्वादि दृष्टवा हिंसाफलं सुधीः।
निरागस्त्र सजन्तूनां हिंसां संकल्पतस्तजेत॥ योगशास्त्र 2/19॥

स्थानांग सूत्र में भी मांसाहारी को नरकगामी बताया गया है। इसी प्रकार आचार्य मनु के अनुसार-मांस का अर्थ ही है, जिसका मैं मांस खा रहा हूं वह अगले जन्म में मुझे खाएगा। यदि मांस को मां और स रूप में लिखे तो उसका अर्थ होता है मुझे खाएगा। आचार्य मनु का कथन इस प्रकार है-

मांसभक्षयिताऽमुत्र, तस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥मनुस्मृति 5-55॥

कई लोग मांसाहार में अधिक पौष्टक तत्त्वों की बात कर इसको खाने का समर्थन करते हैं, किन्तु यह उनकी मिथ्या धारणा है वर्तमान अनुसंधानों से यह निश्चित हो गया है कि मांसाहार से अधिक पौष्टिक तत्त्व शाकाहारी भोजन में है। साथ ही यह भी तथ्य सामने आया है कि मांसाहारी भोजन से अनेक असाध्य रोग भी उत्पन्न होते हैं इसलिए यह सहज ही कहा जा सकता है कि मांसाहार धार्मिक दृष्टि से तो त्याज्य है ही, वैज्ञानिक दृष्टि से भी इसका सेवन सदैव हानिप्रद है। इसलिए मांसाहार कभी भी नहीं करना चाहिये। मांसाहार सामाजिक नैतिक, धार्मिक आर्थिक वैज्ञानिक आदि सभी दृष्टि से अनुपयुक्त है और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयुक्त नहीं है।

(३) मद्यपान- शराब क्या है? सड़ा हुआ पानी, जिस पदार्थ से शराब अर्थात् मदिरा बनायी जाती है उसे पहले सड़ाया जाता है। उसके पश्चात् मदिरा बनती है इसमें हिंसा भी है, मद्यपान एक ऐसा व्यसन है। जो व्यक्ति की विवेक बुद्धि को नष्ट कर देता है। जिस पदार्थ के सेवन से व्यक्ति की मानसिक स्थिति में परिवर्तन आता है, वह मद्यपान के अंतर्गत आता है। इस दृष्टि से इसके अनेक रूप हो सकते हैं। हम यहाँ उन सबका वर्णन नहीं करेंगे। मद्यपान से शरीर तो नष्ट होता ही है, मद्यपान करने वाले का धन भी बरबाद होता है और घर का चैन भी बरबाद होता है। इसके विषय में कहा गया है कि मदिरा की प्रथम घूँट मानव को मूर्ख बनाती है, द्वितीय घूंट पागल बनाती है, तृतीय घूंट से वह दानव की तरह कार्य करने लगता है और चौथी घूंट से वह मुर्दे की भाँति भूमि पर लुढ़क पड़ता है मदिरा पान करने वाले वाला व्यक्ति समझता है कि वह मदिरा पी रहा है। किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत यह है कि मदिरा व्यक्ति को पीती है। जब व्यक्ति मदिरापान का आदी हो जाता है तो वह धीरे-धीरे अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है और अंत में मृत्यु भी प्राप्त हो सकती है इस अर्थ में मदिरा धीमा विष भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक व्यक्ति यह कहते है कि मदिरा तो टॉनिक है, इससे शारीरिक थकान मिटती है। सुस्ती दूर होती है और चुस्ती आती है, किन्तु यहु उनकी मिथ्या धारणा है। मदिरा पान करने वाले व्यक्ति की शारीरिक शक्ति घट जाती है और वह शीघ्र ही थक भी जाता है। मदिरा पान से पेट की ज्ञानवाही और क्रियावाही नाड़ियाँ निश्चेष्ट हो जाती है, जिससे भूख का भान नहीं रहता। लाभ की अपेक्षा हानि होती है। पाचन संस्थान विकृत हो जाता है नशा उतरने के पश्चात् शरीर का अंग अंग शिथिल हो जाता है, इसलिए मद्यपान त्याज्य है।. किसी भी स्थिति में उचित नहीं कहा जा सकता। आचार्य हरिभद्र ने मद्यपान के सोलह दोष इस प्रकार बताये हैं-

(१) शरीर विद्रूप होना (२) शरीर में विविध रोग उत्पन्न होना (३) परिवार में तिरस्कृत होना (४) समय पर कार्य करने की क्षमता न होना (५) अन्तर्मानस में द्वेष उत्पन्न होना (६) ज्ञान तन्तुओं का धुँधला हो जाना, (७) स्मृति का लोप हो जाना (८) बुद्धि भ्रष्ट होना (९) सज्जनों से संपर्क समाप्त हो जाना (१०) वाणी में कठोरता आना (११) नीच कुलोत्पन्न व्यक्तियों से संपर्क (१२) कुलहीनता, (१३) शक्ति ह्रास (१४) धर्म, (१५) अर्थ[१६] काम इन तीनों का नाश होना।

महाकवि कालिदास ने जब एक मदिरा विक्रेता से पूछा कि उसके पात्र में क्या है तो उसने उत्तर दिया कि उसके पात्र में आठ दुर्गुण हैं। (१) मस्ती, (२) पागलपन, (३) कलह (४) धृष्टता (५) बुद्धि का नाश (६) सच्चाई और योग्यता से घृणा (७) खुशी का नाश और (८) नरक का मार्ग।

उपर्युक्त दुर्गुणों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मद्यपान कितना हानिप्रद है। किसी मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि मदिरापान से असंतुष्ट व्यक्ति सुख प्राप्त करने का प्रयास करता है, निरुत्साही व्यक्ति साहस, ढुलमुल मनोवृत्तिवाला आत्म विश्वास और इसी प्रकार उदास व्यक्ति सुख की खोज करता है, किन्तु सबको इसके विपरीत विनाश मिलता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मद्यपान किसी भी स्थिति में हितकर नहीं है। इसका सेवन विनाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दे सकता है, इसलिए कभी भी किसी भी स्थिति में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। कारण यह भी है कि आचार्य हेमचंद्र ने भी लिखा है।

विवेकः संयमो ज्ञानं, सत्यं शौचं दया क्षमा।
मद्यात् प्रलीयते सर्वं तृण्यां वह्निकणादिव।।

योग शास्त्र ३/१६

तात्पर्य यह है कि आग की नन्हीं सी चिनगारी विशालकाय घास के ढेर को नष्ट कर देती है। वैसे ही मदिरापान से विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, क्षमा आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।

(४) वेश्यागमन- चिंतनकारों ने वेश्यागमन को कुपथगामी व्यसन की संज्ञा दी है। यह एक ऐसा चमकीला, लुभावना और आकर्षक व्यसन है, जो जीवन को न केवल निंदनीय बनाता है, वरन् बरबाद भी कर देता है। वेश्या अपने शिकार को फँसाने के लिए कपट व्यवहार करती है। अपनी निर्लज्ज भाव भंगिमा से उसे अपने जाल में फँसाती है, वह इतना अपनत्व प्रदर्शित करती है कि वेश्यागामी यह समझ लेता है कि वह उसके प्रति पूर्ण रूप से समर्पित है। परिणामस्वरूप वेश्यागामी अपना सर्वस्व अर्थात् यौवन बल स्वास्थ्य धन आदि सब कुछ उस पर लुटा देता है और उसकी आँख तो जब खुलती है तब वेश्यागामी की जेब खाली हो जाती है और वेश्या उसे दुत्कार कर अपने कोठे से निकाल देती है, एक वेश्या वेश्यागामी को दर दर का भिखारी बना देती है। शारीरिक दृष्टि से भी वह इतना क्षीण हो चुका होता है कि कुछ कर सकने का सामर्थ्य उसमें शेष नहीं रहता है।

भर्तृहरि ने वेश्या के संबंध में लिखा है-

वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेक्षिताओ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवानाचि धनानि च।।

इसका तात्पर्य यह है कि वेश्या कामाग्नि की ज्वाला है, जो सदा रूप-ईंधन से सुसज्जित रहती है। इस रूप ईंधन से सजी हुई वेश्या कामाग्नि ज्वाला में सभी के यौवन धन आदि भस्म कर देती है।

वेश्या आर्थिक और शारीरिक शोषण करने वाली जीती जागती प्रतिमा है वह समाज का कोढ़ है, मानवता का अभिशाप है, समाज के माथे पर कलंक का काला टीका है। समस्त नारी जाति की लांछन है। शास्त्रों में नारी का गौरव गरिमा का चित्रण करते हुए जिन महान रूपों में चित्रित किया गया है, वैश्या नारी होते हुए भी नारी के उन रूपों के विपरीत रूप प्रस्तुत करने वाली है। सद्गुणों के स्थान पर अवगुणों की खान है। लज्जा को

D:\GYAN\MAMA\KHAND8.PM5
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी का आभूषण कहा गया है, किन्तु वेश्या का इस आभूषण से कोई संबंध नहीं है, वह निर्लज्ज है। वेश्या के संबंध में कथासरित्सागर में ठीक ही कहा गया है कि वेश्याओं से स्नेह की इच्छा करना बालू से तेल निकालने के समान है।

कः प्राज्ञो वांछितस्नेहं वेश्याषु सिकतासु च।

वेश्या कामांध व्यक्तियों को अपने जाल में फँसाती है। कामांध व्यक्ति के संबंध में कहा गया है कि कौए को रात में दिखायी नहीं देता। चमगादड़ को दिन में दिखायी नहीं देता, किन्तु कामांध को न दिन में दिखायी देता है ओर न रात में। ऐसे कामांध व्यक्ति वेश्या के चंगुल में फँसकर अपना सर्वस्व नष्ट कर देते हैं। इतना ही नहीं वेश्याएँ अनेक प्रकार की गुप्त व्याधियों से भी ग्रसित रहती है, जिसके कारण जो भी व्यक्ति उनके संपर्क में आता है, वह भी इन व्याधियों का शिकार हो जाता है और फिर जीवन पर्यन्त दुःख भोगता रहता है, वेश्या तो शरीर की सौदागर होती है। वह धन के बदले अपना तन बेचती है। इसलिए वेश्यागमन को दुर्व्यसन माना गया है। फिर आजकल एड्स नामक एक नया रोग भी उत्पन्न हो गया है। यह रोग यौनाचार के कारण होता है, इसका अभी तक कोई उपचार नहीं निकला है, इसलिए इस घातक रोग से बचने के लिए भी वेश्या का परित्याग कर देना चाहिये। इस व्यसन से सदैव ही बचने का प्रयास करना चाहिये।

(५) शिकार- शिकार अर्थात् आखेट । अपने मनोरंजन प्रयोजन के लिए किसी प्राणी का आखेट करना, शिकार करना शिकार है। यह मनुष्य के जंगलीपन का प्रतीक है। जैन ग्रंथों में इसे पापर्द्धि के कहा गया है कि जिसका तात्पर्य है पाप के द्वारा प्राप्त वृद्धि।

शिकार करना वीरता का नहीं कायरता का प्रतीक है, क्रूरता का द्योतंक है। शिकार में शिकारी अपने आपको छिपाकर पशु पर अपने अस्त्र-शस्त्र का प्रहार कर उसे मारता है। इस प्रकार छिपकर प्रहार करना कायरता की निशाना है। यदि पशु पलटकर शिकारी पर आक्रमण कर दे तो शिकारी को प्राणों का संकट उत्पन्न हो जाता है। शिकारी के पास धर्म नाम की कोई चीज नहीं होती। वह तो पाप से अपनी आय प्राप्त करता है। शिकारी के संबंध में कर्पूर प्रकरण में कहा गया है-

पापद्धधो तनुमद्वधोज्झितघृण। पुत्रेऽपि दुष्टाशयः।

इसका तात्पर्य यह है कि जिस भी व्यक्ति को शिकार का व्यसन लग जाता है कि वह मानव प्राणीवध करने में दया को तिजांजलि देकर हृदय को कठोर बना देता है। वह अपने पुत्र के प्रति भी दया नहीं रख पाता।

आचार्य वसुनन्दी ने कहा है-

महुमज्जमंससेवी पावइ पावं चिरेण जं घोरं।।
तं एयदिणे पुरिसो लहेइ पारद्धिरमणेण।. श्रावकाचार।।

कहने का तात्पर्य यह है कि मधु मद्य मांस का दीर्घकाल तक सेवन करने वाला जितने महान पाप का संचय करता है, उतने सभी पापों को शिकारी एक दिन में शिकार खेलकर संचित कर लेता है। इस कथन से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि शिकार कितना भयंकर व्यसन है। यहां एक बात और सहज ही कही जा सकती है कि जो व्यक्ति अन्य प्राणियों के प्राणों का हरण करता है उसके जीवन में आनंद का कोई स्थान नहीं है। अर्थात् उसे आनंद उपलब्ध नहीं होता है। इसके साथ ही एक अन्य बात यह भी है कि शिकारी शिकार करने के लिए अनेक कठिनाइयों में फँस जाता है। उसे वन-वन भटकना पड़ता है, कई बार मार्ग भूल कर घंटों भूखा-प्यासा वन में इधर से उधर भटकता रहता है, और कभी कभी जिनका का वह शिकार करने के लिए जाता है, स्वयं उनका शिकार भी बन जाता है। अथवा अन्य हिंसक जीवन उसे अपना लक्ष्य बना लेते हैं। वनों में शिकार के लिए भटकते हुए अनेक प्रकार के कष्ट भी सहन करते पड़ते है।

शिकार करना किसी भी स्थिति में न्याय संगत नहीं है। इस वर्तमान भौतिकवादी युग में अंग श्रृंगार, फैशन, विलासिता के लिए निरीह पशु पक्षियों का वध करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। उस समस्त सामग्री पर प्रतिबंध लगना चाहिये, जिसमें निरीह प्राणियों के प्राणों का हरण किया जाता है। शिकार के पापाचार से बचना चाहिये।. पाप से बचकर अपने आपका जीवन सुखमय बनाने का प्रयास करना चाहिये।

(६) चोरी- किसी वस्तु अथवा धन को उसके स्वामी से पूछे बिना ले लेना चोरी हैं। यों यदि सूक्ष्म परिभाषा की जाये तो कई बातों का उदाहरण के लिए यदि हम अपना कार्य नहीं करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं तो कामचोर कर नहीं देते हैं, तो टैक्सचोर हो जाते हैं, भगवान महावीर ने कहा है-

अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा। सूत्रकृतांग। १०/२

इसका तात्पर्य यह है कि बिना दी हुई किसी भी वस्तु को ग्रहण न करो। भगवान का तो यह भी कहना है कि दाँत कुरेदने के लिए एक तिनका भी न लो।

दन्तसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जंण। उत्तराध्ययन १९/२८

विश्व में जितने भी धर्म हैं प्राय: सभी ने चोरी का निषेध ही किया है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि व्यक्ति चोरी क्यों करता है। पहली बात तो यह है कि वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए करता है । इससे बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चोरी करने का कारण लोभ है उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है।

सूवे अतित्ते ये परिग्गहे य सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स लोभाविले आययई अदत्तं।। ३२/२९

तात्पर्य यह है कि रूप में अतृप्त तथा परिग्रह में आसक्त है। उस और उपसक्त (अत्यन्त आसक्त) व्यक्ति सन्तोष को प्राप्त नहीं होता। वह असंतोष के दोष से दु:खी एक लोभ से व्याकुल व्यक्ति दूसरे की अदत्त (नहीं दी हुई) वस्तु ग्रहण करता (चुराता) है।

इसे चोरी का आभ्यन्तर कारण कह सकते हैं।

चोरी के बाह्य कारण निम्नानुसार बताये जाते हैं-

(१) बेकारी (२) दरिद्रता (३) फिजूलखर्ची (४) यश: कीर्ति की लालसा (५) स्वभाव या कुसंस्कार और (६) अराजकता।

संस्कारी व्यक्ति किसी भी स्थिति में चोरी ओर निकृष्टतम कार्य नहीं करेगा। वास्तविकता तो यह है कि चोरी एक असामाजिक वर्जित कार्य है। संस्कारवान व्यक्ति इस तथ्य से भलीभाँति परिचित रहता है। इस कारण वह चोरी करना तो क्या चोरी के विषय में कुछ सकारात्मक विचार भी नहीं कर सकता।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में चोरी के तीस नाम बताये गये हैं। एक विचारक ने छह प्रकार की चोरी बतायी है। (१) छन्न चोरी (२) नजर चोरी (३) ठगी करके चोरी (४) उद्घाटक चोरी (५) बलात् चोरी और (६) घातक चोरी।

किसी से छिपकर अथवा स्वामी की दृष्टि बचाकर वस्तु ले लेना छन्न चोरी है । जैसे सुनार देखते देखते स्वर्ण रजत चुरा लेता है वह नजर चोरी है। ऊपर से ठगना, झूठा विज्ञापन करने धन कमाना ठगी चोरी है। ताला गाँठ आदि खोलकर वस्तु या धन ले जाना उद्घाटक चोरी कहलाती है। किसी को डरा धमका कर उसे लूटे लेना बलात्, चोरी है। किसी पर आक्रमण करके, उसके घर या दुकान में प्रवेश कर धन सम्पत्ति ले जाना घातक चोरी कहलाती है। आजकल ये सभी प्रकार की चोरियाँ खूब हो रही हैं, बल्कि अंतिम तीन प्रकार की चोरियों का तो बोलबाला है।

इनके अतिरिक्त वर्तमान युग में कुछ सभ्य प्रकार की चोरियाँ भी हो रही हैं। जैसे कम बोलना और अधिक मूल्य लेना, मिलावट करना, घूस-घोरी, झूठे दस्तावेजों के माध्यम से सम्पत्ति हड़पना। पक्षपात करना, अर्थ चोरी के साथ-साथ आजकल नाम की चोरी, साहित्य की चोरी उपकार की चोरी, आदि भी खूब हो रही हैं। विवेक सम्पन्न व्यक्ति को इस प्रकार की चोरियों से बचना चाहिये।

चोरी मनुष्य के चरित्र को नष्ट करती है, उसके साहस और कर्त्तव्य परायणता को समाप्त करती है चोरी व्यक्ति में हीन भावना का संचार करती है चोरी करना भी पाप की श्रेणी में आता है। अत: सदैव इससे बचने के लिए प्रयास करना चाहिये। इससे तभी बचा जा सकता है कि जब मन में आए लोभ से बचा जाये। अत: लोभ को भी अपने पास फटकने नहीं देना चाहिये।

(७) परस्त्री सेवन- कामवासना एक ऐसी ज्वाला है, जो जैसे-जैसे भोग में अभिवृद्धि होती है, वैसे-वैसे और भड़कती जाती है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य की सम्पूर्ण सुखशांति उस ज्वाला में भस्म हो जाती है। परस्त्री गमन निंदनीय कृत्य है। परस्त्री गामी व्यक्ति अविश्वसनीय होता है। उसकी स्वयं की पत्नी भी सदैव उससे नाराज रहती है। उसका मन सदैव कलुषित रहता है। उसका ध्येय एक ही रहता है। परनारी सेवन। जिस भी नारी को वह देखता है, वह उसकी ओर वासनात्मक दृष्टि से आकर्षित हो जाता है। वह वासनांध हो जाता है। परस्त्रीगामी व्यक्ति जीवन भर असंतुष्ट बना रहता है।

विचारकों ने परस्त्रीगमन के प्रमुख कारण इस प्रकार बताये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) क्षणिक आवेश (२) अज्ञानता (३) बुरी संगित (४) पति के परस्त्रीगमन को देखकर उसकी पत्नी भी पथभ्रष्ट होती है (५) विकृत साहित्य का पढ़नां (६) धनमद के कारण, (७) धार्मिक अंधविश्वास (८) सहशिक्षा (९) अश्लील चलचित्र, (१०) अनमेल विवाह और (११) मादक पदार्थों का सेवन।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना उचित प्रतीत होता है वह यह कि जिस प्रकार एक पुरुष के लिए पर स्त्री सेवन व्यसन है, ठीक उसी प्रकार एक स्त्री के लिए पर पुरुष सेवन भी व्यसन है, निंदनीय है।

यह बात सत्य है कि गृहस्थ कामवासना का पूर्ण रूप से परित्याग नहीं कर सकता। कामवासना को नियंत्रित करने के लिए मनीषियों ने विवाह संस्कार का विधान किया है। विवाह समाज की नैतिक शांति, पारिवारिक प्रेम और प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने का एक उपाय है। गृहस्थ को चाहिये कि वह अपनी विवाहित पत्नी में ही संतोष करके शेष सभी पर स्त्री आदि के साथ मैथुन विधि का परित्याग करे। उपासक दशांग में भी यही कहा गया है।

सदार संतोषिलिए अवसेषं सव्व मेहुण विहिं पच्चक्खाई।

पर स्त्री सेवन सभी दृष्टि से गलत है, हानिप्रद है। यह अवैध पापाचार है। धर्मपत्नी को छोड़कर जिस भी स्त्री के साथ संबंध बनाया जाता है कि वह निंदनीय तो है ही समाज में प्रतिष्ठा के प्रतिकूल भी है। फिर धर्मपत्नी जिस प्रेम लगन और निष्ठा से अपने पति का साथ निभाती है, उसका पर स्त्री में अभाव होता है पर स्त्री कभी भी व्यक्ति को बीच भँवर में छोड़कर उसको धोखा दे सकती है। वह अपनी प्रतिष्ठा (इज्जत) के नाम पर पुरुष को पतन के गर्त में ढकेल सकती है, सो सेवा धर्मपत्नी करती है, उस सेवा भावना का पर स्त्री में अभाव रहता है। धर्म पत्नी न केवल अपने पति की सेवा करती है, वरन पति के माता-पिता की भी सेवा करती है। परिवार को एक सूत्र में बाँधे रखती है। अपनी संतान के पालन पोषण में जो त्याग वह करती है, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है धर्मपत्नी के संबंध में कहा गया है कि वह मंत्री की भांति सलाह देता है। दासी के समान सेवा करती है। धार्मिक कार्यों में पति को प्रेरणा प्रदान करती है। पृथ्वी की भाँति क्षमाशील होती है। माता के समान स्नेह से भोजन कराती है। ये सब गुण पर स्त्री में कहाँ मिलते हैं?

पर स्त्री से संबंध रखने में पुरुष के प्राण भी संकट में पड़ जाते हैं। मानसिक अशांति बनी रहती है। मनुष्य सदैव संदेहशील बना रहता है। महर्षि वाल्मीकि के अनुसार पर स्त्री से अवैध संबंध रखने जैसा कोई पाप नहीं है।

परदाराभिमशत्तु नान्यतः पापतरं महत्। वाल्मीकि रामायण ३३९/३०

आचार्य मनु ने भी इसे (परस्त्री सेवन को) निकृष्ट कार्य माना है।

नहीदृशमनायुतयं लोके किंचित् दृश्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्। मनुस्मृति।। ४/३४१

महाकवि कालिदास ने परस्त्रीसेवन को अनार्यों का कार्य कहा है-

अनार्यः- परदारव्यवहारः अभिज्ञान शाकुन्तल। इन उदाहरणों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यही है कि परस्त्रीसेवन को सभी ने अनुचित बताया है। अतः इसका परित्याग करना ही उचित है। यदि इस ओर दृष्टि ही न जाये इसका विचार ही नहीं किया जाये और स्व धर्म पत्नी में ही संतोष रखकर अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करते हुए धर्माराधना की जाये तो ऐसा पापाचारों से बचा जा सकता है।

इस निबंध में संक्षेप में सप्त व्यसनों पर विचार किया गया है, सभी व्यसन कष्ट कर, निंदनीय पाप में वृद्धि करने वाले, प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाले हैं। अतः इनसे बचकर ही रहना चाहिये।यदि मनुष्य इससे बचकर जीवन यापन करता है तो उसके जीवन में सच्चरित्रता नैतिकता धार्मिक भावना का सागर दहाड़ें मारेगा। जीवन व्यसन मुक्त रहेगा तो जीवन विकास के द्वार स्वतः खुलते चले जायेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org